E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

लक्षणावृत्ति

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

वाग्देवतावतार आचार्य मम्मट ने तीन प्रकार के अर्थ बताये हैं-मुख्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यङ्ग्यार्थ। इसमें लक्ष्यार्थ की बोधिका शक्ति 'लक्षणा' है ।

लक्षणा को स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं-

मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात्।

अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणारोपिता क्रिया।।

अर्थात् मुख्य अर्थ के बाध होने पर तथा उस (मुख्य अर्थ) के योग (सम्बन्ध) होने पर रूढि अथवा प्रयोजन से जिसके द्वारा अन्य अर्थ की प्रतीति होती है, वह आरोपित वृत्ति (व्यापार) लक्षणा है।

आचार्य मम्मट सोदाहरण स्पष्ट करते हुए कहते हैं- **'कर्मणि कुशलः' इत्यादौ दर्भग्रहणाद्ययोगात् 'गङ्गायां घोषः' इत्यादौ च गङ्गादीनां घोषाद्याधारत्वासंभवात् मुख्यार्थस्य बाधे विवेचकत्वादौ सामीप्ये च सम्बन्धो रूढितः प्रसिद्धः तथा गङ्गातटे घोषः इत्यादेः प्रयोगात् येषां न तथा प्रतिपत्तिः तेषां पावनत्वादीनां धर्माणां तथा प्रतिपादनात्मनः प्रयोजनाच्च मुख्येनामुख्योऽर्थो लक्ष्यते यत् स आरोपितः शब्दव्यापारः सान्तरार्थनिष्ठो लक्षणा**।

अर्थात् 'कर्मणि कुशलः' इस प्रयोग में कुश का ग्रहण आदि का योग (सम्बन्ध) न होने से और 'गङ्गायां घोषः' इस प्रयोग में गङ्गा आदि पद का घोष आदि का आधार न हो सकने (असम्भव) होने के कारण मुख्यार्थ का बाध होने पर विवेकशीलता आदि और सामीप्य सम्बन्ध होने पर (कर्मणि कुशलः में) रूढ़ि (प्रसिद्धि) से तथा (गङ्गायां घोषः में) 'गङ्गा तट पर घोष है' इत्यादि प्रयोग से जिनकी वैसी प्रतीति नहीं होती, उन पावनत्वादि धर्मों को वैसी (उस प्रकार) प्रतिपादन रूप प्रयोजन से जो मुख्यार्थ से (सम्बद्ध) अमुख्य अर्थ की प्रतीति है, वह व्यवहित अर्थ में रहने वाला आरोपित शब्दव्यापार लक्षणा है।

वस्तुतः आचार्य मम्मट ने रूढ़ि वश अथवा किसी प्रयोजन से मुख्य अर्थ से सम्बद्ध प्रतीति को लक्ष्यार्थ और उसकी ग्राहिका शक्ति को 'लक्षणा' कहा है। उन्होंने मुख्यार्थ-बाध, मुख्यार्थ-योग और रूढ़ि या प्रयोजन इन तीनों को लक्षणा का समुदित हेतु माना है अर्थात् मम्मट के अनुसार लक्षण के व्यापार के लिए मुख्यार्थ बाध, मुख्यार्थयोग, रूढ़ि या प्रयोजन तीनों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार मुख्यार्थबाध, मुख्यार्थयोग और रूढ़ि अर्थ व प्रयोजन ये तीनों समुदित रूप से लक्षणा के हेतु माने गये हैं।

मुख्यार्थबाध– मुख्य अर्थ (वाच्यार्थ) का बाध लक्षणा का प्रथम हेतु है। व्याख्याकार मुख्यार्थबाध की दो प्रकार की व्याख्या करते हैं। प्रथम के अनुसार मुख्य अर्थ का अन्वय न बन सकना लक्षणा का हेतु है । इसे 'अन्वयानुपपत्ति' कहते हैं अर्थात् मुख्य अर्थ का अन्वय अनुपपन्न होने पर लक्षणा होती है। जैसे 'गङ्गाया घोषः' इस उदाहरण में 'गङ्गा' का मुख्य अर्थ 'जलप्रवाह' है और 'घोष' का अर्थ 'घोषावास' है। गङ्गा के प्रवाह में घोष का आवास (रहना) असम्भव है, क्योंकि यहाँ गङ्गा पद का घोष के साथ अन्वय नहीं बन रहा है, अतः लक्षणा के द्वारा गङ्गा पद का सामीप्य सम्बन्ध से तटरूप अर्थ का बोध कराता है। कतिपय आचार्यों के अनुसार तात्पर्यानुपपत्ति को लक्षणा का बीज मानना चाहिए। तात्पर्यानुपपत्ति के अनुसार 'वक्ता' के तात्पर्य के अनुपपन्न होने पर लक्षणा होती है।

मुख्यार्थ योग- मुख्यार्थ से सम्बद्ध अर्थ की प्रतीति को मुख्यार्थयोग कहते हैं। मुख्यार्थयोग लक्षणा का द्वितीय हेतु है। अर्थात् मुख्यार्थ (वाच्यार्थ) से सम्बद्ध अर्थ की प्रतीति लक्षणा है। यह सम्बन्ध सामीप्यादि सम्बन्ध से माना जाता है। इस प्रकार सामीप्यादि सम्बन्ध से मुख्यार्थ से सम्बद्ध अर्थ की प्रतीति लक्षणा है। जैसे 'गङ्गायां घोषः' में 'गङ्गा' शब्द का मुख्य अर्थ 'जलप्रवाह' है, किन्तु 'जलप्रवाह' में घोष का वास असम्भव है, अतः यहाँ सामीप्य सम्बन्ध से गङ्गा पद का 'तट' रूप अर्थ में लक्षणा होती है ।

रूढितोऽथ प्रयोजनात्- आचार्य मम्मट ने रूढि या प्रयोजन को लक्षणा का तृतीय हेतु कहा है। नरसिंह ठक्कुर के मतानुसार आचार्य मम्मट को यहां 'रूढ़ि लक्षणा' और 'प्रयोजन लक्षणा' लक्षणा के ये दो भेद अभीष्ट हैं किन्तु प्रदीपकार इस मत से सहमत नहीं है। किन्तु आचार्य मम्मट के 'व्यंगेन रहिता रूढौ सहिता तु प्रयोजने' इस सूत्र से स्पष्ट है कि आचार्य मम्मट को 'रूढ़ि' अथवा 'प्रयोजन' लक्षणा के ये दोनों हेतु स्वीकार हैं, क्योंकि आचार्य मम्मट ने दोनों का पृथक्-पृथक उदाहरण दिया है। आचार्य मम्मट ने

रूढ़ि लक्षणा का उदाहरण 'कर्मणि कुशलः' और प्रयोजन लक्षणा का उदाहरण 'गङ्गायां घोषः' दिया है। इस सूत्र में 'अथ' पद 'अथवा' का वाचक है। इस प्रकार आचार्य मम्मट के अनुसार 'रूढ़ि' अथवा 'प्रयोजन' लक्षणा के ये दो मुख्य हेतु हैं। यदि 'रूढ़ि या प्रयोजन को लक्षणा का हेतु नहीं माना जायगा तो 'गङ्गायां घोषः' इस उदाहरण में 'गङ्गा' पद का प्रवाहरूप मुख्य अर्थ का बाध होने पर मुख्य अर्थ से सम्बद्ध 'गङ्गा-पुल' आदि अर्थों में भी लक्षणा होने लगेगी, अतः लक्षणा में रूढ़ि या प्रयोजन हेतु मानना उचित है। उक्त उदाहरण में शैत्यपावनलादि रूप प्रयोजन है, अतः गङ्गा पद का तट रूप अर्थ में लक्षणा होती है।

अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत्- यहाँ पर 'यत्' पद में करण अर्थ में लुप्त तृतीया विभक्ति है। अतः इसका स्वरूप होगा-'यया (यत्) अन्योऽर्थो लक्ष्यते सा लक्षणा' अर्थात् जिस वृत्ति के द्वारा अन्य अर्थ (मुख्यार्थभिन्न अर्थ) लक्षित हो, उसे लक्षणा कहते हैं । कुछ आचार्य 'यत्' पद को क्रियाविशेषण मानते हैं। तदनुसार अन्य अर्थ (मुख्यार्थ से भिन्न अर्थ) जो लक्षित होता है, वह लक्षणा है।

लक्षणारोपिता क्रिया- मम्मट के अनुसार लक्षणा आरोपिता क्रिया (व्यापार) है। यहाँ पर 'आरोपित' का अर्थ कल्पित है और 'क्रिया' का अर्थ 'व्यापार' है। इस प्रकार कल्पित व्यापार लक्षणा है, स्वाभाविक नहीं। शब्द और अर्थ का वाच्य-वाचकभाव रूप सम्बन्ध स्वाभाविक सम्बन्ध होता है और उससे भिन्न आरोपित (कल्पित) व्यापार लक्षणा है। जैसे 'गङ्गायां गावश्चरन्ति' इस उदाहरण में सामीप्य सम्बन्ध से 'तीर' पद में गङ्गात्व का आरोप है। इस प्रकार लक्षणा आरोपित (कल्पित) व्यापार है।

आचार्य मम्मट ने रूढ़ि लक्षणा का उदाहरण 'कर्मणि कुशलः' दिया है । यहा पर 'कुशल' शब्द का मुख्य अर्थ 'कुशान् दर्भान् लाति आदत्ते इति कुशलः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'कुश लाने वाला' है, किन्तु यहाँ पर 'कुश लाने वाला' यह अर्थ सङ्गत नहीं है। इस असङ्गति के निराकरण के लिए 'कुशल' शब्द 'दक्ष' या 'चतुर' रूप अर्थ का प्रतिपादन करता है। यहां पर 'कुशानयन' रूप 'मुख्यार्थ' और 'दक्ष' या 'चतुर' रूप लक्ष्यार्थ में साध्य सम्बन्ध है; क्योंकि कुशानयन में जिस प्रकार की विवेकशीलता हुआ करती है, उसी प्रकार की विवेकशीलता किसी कार्य के सम्पादन में भी आवश्यक है। यहाँ पर साधर्म्य

सम्बन्ध से 'कुशल' शब्द दक्ष या चतुर अर्थ में रूढ़ हो गया है। अतः यहाँ रूढ़ि के कारण 'कुशल' शब्द की दक्ष या चतुर में लक्षणा होती है यह मम्मट का अभिप्राय है।

आचार्य मम्मट ने प्रयोजनवती लक्षणा का उदाहरण 'गङ्गायां घोषः' दिया है। यहाँ पर 'गङ्गा' शब्द का मुख्य अर्थ 'प्रवाह' है उसमें घोष का आवास असम्भव है, अतः सामीप्य सम्बन्ध से गङ्गा पद का तट रूप अर्थ में लक्षणा होती है। किन्तु गङ्गा पद का तट रूप अर्थ में ही लक्षणा क्यों? 'पुल' आदि में लक्षणा क्यों नहीं होती? अतः यहाँ पर कोई प्रयोजन होगा और वह है 'शैत्यपावनत्व'। अर्थात् शैत्यपावनत्व रूप प्रयोजन से गङ्गा पद की तट रूप अर्थ में लक्षणा होती है।

आचार्य मम्मट ने 'आरोपित शब्दव्यापार' को लक्षणा कहा है। वह (कल्पित व्यापार) शब्द का 'सान्तरार्थनिष्ठ' व्यापार है। तात्पर्य यह कि मुख्यार्थ बाध होने पर व्यवहित अर्थ (लक्ष्यार्थ) का बोध कराने वाले (बोधक) व्यापार को आरोपित व्यापार कहते हैं-"अन्तरं व्यवधानं तेन सह वर्तते इति सान्तरः (मुख्यार्थबाधाद्युपस्थित्या) व्यवहितो योऽर्थः लक्ष्यरूपः तन्निष्ठः तद्विषयकः (तद्बोधकः) इत्यर्थः"। यद्यपि 'गङ्गायां घोषः' इस उदाहरण में 'गङ्गा' शब्द से प्रत्यायित (बोधित) प्रवाह तीर अर्थ को लक्षित करता है, इस प्रकार लक्षणा अर्थ व्यापार है, तथापि वाच्य धर्म का वाचक शब्द में आरोप किया जाता है। इसलिए लक्षणा शब्द व्यापार है, यह व्यवहार होता है।

लक्षणा के भेद-

आचार्य मम्मट लक्षणा के भेदों का निरूपण किया है। प्रथमतः उन्होंने लक्षणा के दो भेद किए हैं-उपादान लक्षणा और लक्षण लक्षणा। ये दोनों भेद शुद्धा लक्षणा के हैं। आचार्य मम्मट का कथन है-

स्वसिद्धये पराक्षेपः परार्थं स्वसमर्पणम्।

उपादानं लक्षणं चेत्युक्ता शुद्धैव सा द्विधा।।

अर्थात् अपने (वाच्यार्थ के) अन्वय की सिद्धि के लिए अन्य (दूसरे) अर्थ का आक्षेप करना **'उपादानलक्षणा'** है और दूसरे के लिए (अमुख्य अर्थ के अन्वय को सिद्धि के लिए) अपने को समर्पित कर देना (मुख्यार्थ का समर्पण या त्याग करना) **'लक्षणलक्षणा'** है। इस प्रकार उपा दान और लक्षण रूप से ये दोनों (उपादानलक्षणा और लक्षणलक्षणा) शुद्धा ही कही गई हैं।

उपादानललक्षणा- उपादानलक्षणा का लक्षण है **'स्वसिद्धये पराक्षेपः .....उपादानम्'** अर्थात् अपने (शक्यार्थ, वाच्यार्थ के) अन्वय की सिद्धि के लिए अन्य अर्थ (अशक्यार्थ) का आक्षेप करना 'उपादानलक्षणा' है। तात्पर्य यह कि अपने अर्थ का परित्याग किये बिना अपने से भिन्न अर्थ का उपस्थापन (ग्रहण) उपादानलक्षणा है। मुकुलभट्ट ने उपादान लक्षणा के लक्षण 'स्वसिद्ध्यर्थतया वस्त्वन्तरस्याक्षेपो.....उपादनाम्' बताया है। जैसे 'कुन्ताः प्रविशन्ति' में 'कुन्त' शब्द अपने अर्थ (मुख्यार्थ, कुन्त आदि) का परित्याग किये बिना ही अन्वय की सिद्धि के लिए अन्य (अशक्य) अर्थ (कुन्तधारी पुरुष) का आक्षेप कर लिया जाता है। आचार्य मम्मट इसे इस प्रकार स्पष्ट करते हैं-'कुन्ताः प्रविशन्ति', 'यष्टयः प्रविशन्ति' इत्यादौ कुन्तादिभिरात्मनः प्रवेशसिद्ध्यर्थं स्वसंयोगिनः पुरुषा आक्षिप्यन्ते, तत उपादानेनेय लक्षणा। अर्थात् 'कुन्ताः प्रतिशन्ति' (भाले प्रवेश कर रहे हैं) 'यष्टयः प्रविशन्ति' (लाठियाँ प्रवेश कर रही हैं) इत्यादि वाक्यों में 'कुन्त' आदि के द्वारा अपने प्रवेश रूप अन्वय की सिद्धि के लिए अपने अर्थों से सम्बद्ध (कुन्तधारी अथवा यष्टिधारी) पुरुष का आक्षेप किया जाता है, इसलिए उपादान (स्वार्थ-मुख्यार्थ के अपरित्यागपूर्वक अन्यार्थ अमुख्य अर्थ के ग्रहण करने) के कारण यहाँ उपादान लक्षणा है। आचार्य मम्मट ने उपादानलक्षणा का उदाहरण 'कुन्ता प्रविशन्ति', 'यष्टयः प्रविशन्ति' दिया है। 'कुन्ताः प्रविशन्ति' (भाले प्रवेश कर रहे हैं) इस वाक्य में (भाले) के अचेतन होने के कारण प्रवेश क्रिया असम्भव है, अतः यहाँ मुख्यार्थ का बाध है। अतः 'कुन्त' शब्द अपने से सम्बन्ध रखने वाले कुन्तधारी पुरुष का आक्षेप कर लेता है। तब 'कुन्ताः प्रविशन्ति' का अर्थ 'कुन्तधारी पुरुष प्रवेश करते हैं' यह अर्थ हो जाता है। यहाँ पर पुरुष में 'कुन्त के समान तीक्ष्णता' अथवा 'कुन्तों की बहुलता' का बोध कराना प्रयोजन है। अतः यह उपादान लक्षणा का उदाहरण है। इसी प्रकार 'यष्टयः प्रविशन्ति' (दण्डे प्रवेश कर रहे हैं) इस वाक्य में दण्डे (लाठी) के अचेतन होने के कारण प्रवेशक्रिया असम्भव है, अतः मुख्यार्थ का बाध है, इसलिए 'यष्टि' शब्द अपने से सम्बन्ध रखने वाले यष्टिधारी पुरुष का आक्षेप कर लेता है। तब 'यष्टयः प्रविशन्ति' का 'यष्टिधारी पुरुष' प्रवेश करते हैं, यह अर्थ हो जाता है। इस प्रकार यहाँ स्वार्थ के अपरित्यागपूर्वक पदार्थ (यष्टिधारी पुरुष) का ग्रहण होने से 'उपादान लक्षणा' है। वैयाकरण लोग इसे 'अजहल्लक्षणा' या 'अजहत्स्वार्थावृत्ति' कहते हैं।

लक्षणलक्षणा-आचार्य मम्मट ने लक्षणलक्षणा का लक्षण 'परार्थं स्वसमर्पणं .....लक्षणलक्षणा' बताया है अर्थात् जहाँ पर शब्द दूसरे (अशक्य) अर्थ के अन्वय की सिद्धि के लिए अपने अर्थ का समर्पण (परित्याग) कर देता है, उसे 'लक्षणलक्षणा' कहते हैं। तात्पर्य यह कि स्वार्थ (अपने मुख्य अर्थ) का परित्याग करके अन्य (अमुख्य) अर्थ को लक्षित करना 'लक्षणलक्षणा' है। इस प्रकार स्वार्थ का परित्याग कर अन्य अर्थ को उपस्थापित (लक्षित) करना 'लक्षणलक्षणा' है। (स्वार्थपरित्यागेन परार्थोपस्थापनं लक्षणम्)। 'गङ्गायां घोषः' में 'गङ्गा' पद अन्य (अशक्य, तीरादि रूप) अर्थ के अन्वय की सिद्धि के लिए अपने (शक्य, प्रवाहरूप) अर्थ का परित्याग (स्वसमर्पण) कर देता है अतः यहाँ 'लक्षणलक्षणा' है। आचार्य मम्मट इसे इस प्रकार कहते हैं-'गङ्गायां घोषः' इत्यत्र तटस्य धोषाधिकरणत्वसिद्धये गङ्गाशब्दः स्वार्थमर्पयति इत्येवमादी लक्षणेनैषा लक्षणा। अर्थात् गंगायां घोषः यहाँ पर तट के घोष का आधार (अधि- करण) सिद्धि के लिए गंगा शब्द अपने प्रवाह रूप अर्थ का परित्याग कर देता है, इस प्रकार यहाँ स्वार्थसमर्पण रूप लक्षण के कारण लक्षण लक्षणा है। आचार्य मम्मट ने लक्षणलक्षणा का उदाहरण 'गङ्गायां घोषः' दिया है। दूसरे के लिए अपने अर्थ का समर्पण कर देना लक्षणलक्षणा है अर्थात् जहाँ सक्षम शब्द दूसरे के अन्वय सिद्धि के लिए अपने मुख्य अर्थ का परित्याग कर देता है, वहाँ लक्षणलक्षणा होती है। यहां पर 'गङ्गा' पद अन्य तीरादि रूप अर्थ के अन्वय सिद्धि के लिए अपने अर्थ (प्रवाह रूप मुख्यार्थ) का परित्याग कर सामीप्य सम्बन्ध के तट रूप अर्थ का बोध कराता है। अतः यहाँ 'लक्षणलक्षणा' है। शैत्यपावनत्वरूप आधिक्य की प्रतीति लक्षणा का प्रयोजन है। अब प्रश्न यह उठता है कि गङ्गा पद से जो तीर (तट) रूप अर्थ लक्षित होता है, क्या वहाँ केवल तीर रूप अर्थ ही उपस्थित होता है या गङ्गा से सम्बद्ध तीर रूप अर्थ उपस्थित होता है? यदि केवल तीर रूप अर्थ उपस्थित होता है तो गङ्गा का तीर कहने से यमुना का तीर रूप अर्थ भी उपस्थित होगा। अतः गङ्गा पद से केवल तीर रूप अर्थ ही उपस्थित नहीं होता है, बल्कि गङ्गातीर रूप अर्थ उपस्थित होता है। वैयाकरण लोग इसे 'जहत्स्वार्थावृत्ति' या 'जहल्लक्षणा' कहते हैं। महावैयाकरण नागेश भट्ट ने 'लक्षणलक्षणा' या 'जहत्स्वार्थावृत्ति' का लक्षण निम्न प्रकार बताया है- 'स्वार्थपरित्यागेनेतरार्थाभिधायिका जहत्स्वार्था'।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि यह दोनों प्रकार की लक्षणा (उपादानलक्षणा और लक्षण लक्षणा) शुद्धा कहलाती है; क्योंकि ये दोनों उपचार (सादृश्याख्य सम्बन्ध) से मिश्रित नहीं होती। इन दोनों में लक्ष्य (तटादि) तथा लक्षक (गङ्गा आदि) के भेद-प्रतीति रूप ताटस्थ्य (उदासीनता) नहीं है। गङ्गा आदि शब्दों के द्वारा तटादि (लक्ष्यार्थ) के प्रतिपादन में गङ्गा (शक्य, प्रवाह) और तीर (लक्ष्य) में अभेद की प्रतीति होने पर ही वक्ता के अभीष्ट (प्रतिपादयिषित) शैत्य-पावनत्व रूप प्रयोजन की प्रतीति होती है- "उभयरूपा चेयं शुद्धा उपचारेणामिश्रितत्त्वत्। अनयोर्लक्ष्यस्य लक्षकस्य च न भेदरूपं ताटस्थ्यम्। तदादीनां गङ्गादिशब्दैः प्रतिपादने तत्त्वप्रतिपत्तौ हि प्रतिपादयिषित प्रयोजन सम्प्रत्ययः"।

वस्तुतः आचार्य मम्मट ने लक्षणा के दो भेद बताये है- शुद्धा और गौणी। इनमें सादृश्यादि सम्बन्ध न होने से 'शुद्धा' और सादृश्य सम्बन्ध से प्रवृति होने पर 'गौणी' होती है। तात्पर्य यह कि उपचार मिश्रित 'गौणी' और उपचार से अमिश्रित (रहित) 'शुद्धा' लक्षणा होती है। काव्यालङ्कारशास्त्र में 'उपचार' शब्द को एक पारिभाषिक शब्द माना गया है। आचार्य विश्वनाथ ने परस्पर भिन्न दो वस्तुओं के सादृश्यातिशय ये कारण भेदप्रतीति स्थगन को उपचार कहा है-"अत्यन्तं विशकलितयोः सादृश्यातिशयमहिम्ना भेदप्रतीतिस्थगनमुपचारः"। प्रदीपकार के अनुसार सादृश्य सम्बन्ध से प्रवृति उपचार है अथवा अत्यन्त भिन्न दो पदार्थों (वस्तुओं के सादृश्यातिशय के कारण भेदप्रतीति का स्थगित होना उपचार है- "उपचारश्च सादृश्यसम्बन्धेन प्रवृत्तिः, सादृश्यातिशयमहिम्ना भिन्नयोः पदार्थयोर्भेदप्रतीतिस्थगनं वा" अर्थात् सादृश्य के कारण दो भिन्न वस्तुओं में भेद की प्रतीति न होना 'उपचार' है अर्थात् जहाँ पर दो भिन्न पदार्थों में साधर्म्य अथवा सादृश्य के कारण परस्पर भिन्नता का स्थगित हो जाना उपचार है। जैसे 'सिंहो माणवकः' इस उदाहरण में सिंहगत शौर्यादि गुणों का सादृश्य के कारण बालक में आरोप कर लिया जाता है। यहां गौणी लक्षणा है। मम्मट ने इसी उपचार के मिश्रण से गौणी ओर उपचार रहित लक्षणा को शुद्धा कहा है।

सारोपालक्षणा-सारोपालक्षणा को स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट का कथन है-"सारोपान्या तु यत्रोक्तौ विषयी विषयस्तथा। आरोप्यमाणः आरोपविषयश्च यत्रानपह्नुतभेदा सामानाधिकरण्येन निर्दिश्यते तत्र लक्षणा सारोपा"। अर्थात् जहाँ पर विषयी (आरोप्यमाण) और विषय (आरोपविषय) दोनों शब्दतः

(स्वरूप से) कथित हों, वह एक (अन्या) 'सारोपा' लक्षणा है। जहाँ आरोप्यमाण और आरोपविषय का भेद छिपाया नहीं जाता और दोनों का समानाधिकरण रूप से निर्देश किया जाता है; वहाँ 'सारोपा' लक्षणा होती है। आचार्य मम्मट सारोपा लक्षणा का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि जहाँ पर विषयी (आरोप्यमाण, उपमान) और विषय (आरोपविषय, उपमेय) दोनों शब्दतः कथित होते हैं और दोनों समानाधिकरण रूप में निर्दिष्ट किये जाते हैं, वहाँ 'सारोपा' लक्षणा होती है। जैसे- 'गौर्वाहीकः' इस उदाहरण में 'विषयी' (आरोप्यमाण) 'गो' और आरोपविषय 'वाहीक' आदि दोनों अपने-अपने स्वरूप से शब्दतः कथित हैं अर्थात् विषयी (गवादि) और विषय (वाहीकादि) अपने-अपने वाचक शब्दों द्वारा उपस्थित किये गये हैं और दोनों समानाधिकरण रूप से निर्दिष्ट किये गये हैं। यहाँ पर 'आरोप' का अर्थ है-विषय और विषयी को पृथक्-पृथक् प्रस्तुत करना-'विषयविषयिणोभेदेनोपन्यासोऽत्रारोपपदार्थः इति प्रदीपकाराः'। मुकुलभट्ट का कथन है कि जहां उपचर्यमाण (विषयी) और उपचर्यमाणविषय (आरोप विषय) दोनों का स्वरूप छिपा न हो अर्थात् दोनों अपने स्वरूप में स्थित हों, वहाँ 'अध्यारोप' (सारोप) होता है-'यत्रोपपर्यमाणेनोपचर्यमाणविषयस्य स्वरूपं नापह्नूयते, तत्राध्यारोपः'।

साध्यवसानालक्षणा-साध्यवासनालक्षणा को स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं-"विषय्यन्तः कृतेऽन्यस्मिन् सा स्यात् साध्यवसानिका। विषयिणाऽऽरोप्यमाणेनान्तःकृते निगीर्णे अन्यस्मिन्नारोपविषये सति साध्यवसाना स्यात्"। अर्थात् जहाँ पर विषयी (आरोप्यमाण) के द्वारा अन्य आरोप विषय को अंतर्लीन कर लिया जाता है, वहाँ 'साध्यवसाना' लक्षणा होती है। विषयी अर्थात् आरोप्यमाण के द्वारा आरोप विषय निगीर्ण (अन्तर्लीन) कर लिये जाने पर 'साध्यवसानालक्षणा' होती है। आचार्य मम्मट साध्यवसानालक्षणा का लक्षण प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि जहाँ पर आरोप विषय शब्दतः कथित नहीं होता, आरोप्यमाण (विषयी) के द्वारा अपने में अन्तर्भाव कर लिया जाता है, वहाँ 'साध्यवसानालक्षणा' होती है। तात्पर्य यह कि जहाँ पर आरोपविषय के वाचक शब्द का प्रयोग नहीं होता और आरोप्यमाण वाचक शब्द के द्वारा आरोप विषय का निगरण होने से विषयी के द्वारा विषय की अभेद प्रतीति होती है, वहाँ 'साध्यवसानालक्षणा' होती है। जैसे 'गौरयम्' इस उदाहरण में विषयी

(आरोप्यमाण गो) के द्वारा विषय (वाहीक) का निगरण कर लिया गया है और दोनों में अभेद प्रतीति होती है। अतः यहाँ 'साध्यवसानालक्षणा' है।

आचार्य मम्मट आगे कहते हैं सारोपा और साध्यवसाना दोनों भेद सादृश्य सम्बन्ध से तथा अन्य सम्बन्ध से गौण और शुद्ध भेद समझने चाहिए-

"भेदाविभौ च सादृश्यात्सम्बन्धान्तरतस्तथा।

गौणौ शुद्धौ च विज्ञेयौ....."।।

आचार्य मम्मट लक्षणा के भेदों में 'सारोपा' और 'साध्यवसाना' ये दो भेद मानते हैं। उन्होंने सादृश्य सम्बन्ध के आधार पर इनके 'शुद्धा' और 'गौणी' रूप दो भेद किये हैं। जहाँ पर सादृश्य सम्बन्ध से लक्षणा होती है, वहाँ गौणी लक्षणा होती है, जैसे-'गौर्वाहीकः' में गोगत जड़ता मन्दता आदि गुणों के सादृश्य के कारण 'गो' शब्द की वाहीक (जड़तादिविशिष्ट पुरुष) में लक्षणा होती है। यहाँ गौणी लक्षणा सारोपा है। जहाँ पर सम्बन्धान्तर अर्थात् सादृश्य सम्बन्ध से भिन्न कार्य-कारण भाव आदि सम्बन्ध से लक्षणा होती है, वहाँ शुद्धा लक्षणा होती हैं। जैसे- 'आयुर्घृतम्'। यहाँ पर आयु और घृत (घी) में कार्यकारणभाव सम्बन्ध होने से 'आयु' शब्द का 'घृत' रूप अर्थ में लक्षणा होती है। अतः यह 'शुद्धा' लक्षणा का उदाहरण है। इस प्रकार मम्मट ने सारोपा और साध्यवसाना दोनों के 'सादृश्य सम्बन्ध के आधार' पर 'गौणी' और 'कार्यकारणभावादि' के सम्बन्ध से 'शुद्धा' रूप दो-दो भेद किये हैं। इस प्रकार मम्मट के अनुसार सारोपा के दो भेद (गौणी सारोपा और शुद्धा सारोपा) तथा साध्यवसाना के दो भेद (गौणी साध्यवसाना और शुद्धा साध्यवसाना) होते हैं। इस प्रकार सारोपा और साध्यवसाना के कुल चार भेद होते हैं-

(१) गौणी सारोपा

(२) गौणी साध्यवसाना

(३) शुद्धा सारोपा

(४) शुद्धा साध्यवसाना

मम्मट इनका क्रमशः उदाहरण देते हैं

(१) गौणी सारोपा- आचार्य मम्मट ने गौणी सारोपा का उदाहरण 'गोर्वाहीकः' दिया है। आचार्य मम्मट ने वाहीक देशविशेष का नाम है। कुछ विद्वान् वाहीक देश में रहने वाले पुरुष को वाहीक कहते हैं। अन्य विद्वान् 'बहिर्भवो वाहीकः' इस व्युत्पत्ति के आधार पर शास्त्रीय आचार से विमुख (असंस्कृत), व्यक्ति को 'वाहीक' कहते हैं-'बहिर्भवो वाहीक इति शास्त्रीयाचाराद्बहिर्भूतः'। यहाँ पर गो में रहने वाले जड़ता, मन्दता आदि गुणों का वाहीक (जड़ता-मन्दता विशिष्ट पुरुष) में लक्षणा के द्वारा आरोप किया जाता है। अतः यहाँ गौणी सारोपा लक्षणा है।

(२) गौणी साध्यवसाना- इसका उदाहरण 'गौरयम्' है। यहाँ पर आरोपविषय 'वाहीक' शब्दतः कथित नहीं है, उसका विषयी (आरोप्यमाण, गौ) के द्वारा निगरण (अन्तर्भाव) कर लिया गया है, अतः यहाँ गौणी साध्यवसाना लक्षणा है।

यहाँ ध्यातव्य है कि जड़ता-मन्दता आदि गुण 'गो' और 'वाहीक' दोनों में समान रूप से है, अतः ये साधारण गुण हैं, इन जड़ता आदि साधारण गुणों का आश्रय वाहीक है। इसीलिए 'गो' शब्द की वाहीक में लक्षणा होती है। भाव यह है कि गोगत (गो में रहने वाले) जाड्यादि गुणों के समान जाड्यादि गुणों के आश्रय होने से वाहीकरूप अर्थ का लक्षणा के द्वारा बोध होता है।

शुद्धा सारोपा और शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा के उदाहरण-

'आयुर्घृतम्', 'आयुरेवेदम्' इत्यादौ च सादृश्यादन्यत् कार्यकारणभावादिसम्बन्धान्तरम्। एवमादौ च कार्यकारणभावादिलक्षणपूर्वे आरोपाध्यवसाने। अर्थात् 'आयुर्घतम्' (घी आयु है) और 'आयुरेवेदम्' (यह आयु ही है) इत्यादि उदाहरणों में सादृश्य से भिन्न कार्यकारणभाव आदि अन्य सम्बन्ध हैं, इस प्रकार के उदाहरणों में कार्यकारणभावादि लक्षणपूर्वक आरोप और अध्यवसान होते हैं।

वस्तुतः आचार्य मम्मट ने शुद्धा लक्षणा के दो भेद किये हैं- 'शुद्धा सारोपा' और 'शुद्धा साध्यवसाना'। जहाँ पर सम्बन्धान्तर अर्थात् सादृश्य सम्बन्ध से भिन्न कार्यकारण भावादि सम्बन्ध होते हैं, वहाँ पर 'शुद्धा लक्षणा' होती है। आचार्य मम्मट ने 'शुद्धा लक्षणा' के दोनों भेदों (शुद्धा सारोपा और शुद्धा साध्यवसाना) के क्रमशः 'आयुर्घृतम्' और 'आयुरेवेदम्' उदाहरण दिये हैं। मम्मट ने शुद्धा सारोपा

लक्षणा का उदाहरण 'आयुर्घृतम्' दिया है। यहाँ पर 'घृत आयु का कारण है और आयु उसका कार्य इस प्रकार दोनों कार्यकारणभाव रूप सम्बन्ध होने से 'आयु' शब्द का 'घृतरूप' अर्थ में लक्षणा होती है। यहाँ पर आरोप्यमाण (विषयी) 'आयु' और आरोपविषय 'घृत' दोनों शब्दतः कथित हैं, अतः यहाँ शुद्धा सारोपालक्षणा है। शुद्धा साध्यवसाना का उदाहरण 'आयुरेवेदम्' है। यहाँ पर भी कार्यकारणभाव रूप सम्बन्ध से आयु शब्द का 'इदम्' (घृत) में लक्षणा होती है। यहां पर आरोप्यमाण (विषयी) 'आयु' शब्द तो शब्दतः उपात्त (कथित) है किन्तु आरोपविषय 'घृत' शब्दतः उपात्त नहीं है; बल्कि आरोप्यमाण (विषयी) आयु के द्वारा विषय 'घृत' का निगरण (अन्तर्भाव) कर लिया गया है, अतः यह शुद्धा साध्यवसानालक्षणा का उदाहरण है। इस प्रकार यहाँ पर 'आयु' और 'घृत' में कार्य कारणभाव रूप सम्बन्ध होने से 'आरोप' और 'अध्यवसान' होते हैं।

आचार्य मम्मट के अनुसार गौणी लक्षणा के दोनों भेदों 'सारोपा' और 'साध्यवसाना' आरोप्यमाण विषयी गो तथा आरोपविषय वाहीक में भेद होने पर भी दोनों में (गो और वाहीक) में तादात्म्य की प्रतीति कराना ही लक्षणा का प्रयोजन है। जैसे, 'गौर्वाहीकः' में 'गो' और 'वाहीक' दोनों अलग-अलग प्रतीत होते हैं किन्तु जाड्यादि गुणों के सादृश्यातिशय के कारण लक्षणा के द्वारा दोनों में (गो और वाहीक में) तादात्म्य की प्रतीति होती है। इसी प्रकार गौणी साध्यवसाना लक्षणा का प्रयोजन आरोप्यमाण विषयी तथा आरोपविषय में अभेद की प्रतीति कराना है। जैसे 'गौरयम्' में विषयी और विषय दोनों सर्वथा पूर्ण रूप से अभेद की प्रतीति होती है।

इसी प्रकार शुद्धा लक्षणा के दोनों भेदों सारोपा और साध्यवसाना में शुद्धा सारोपा लक्षणा में अन्यों में विलक्षण कार्य-कारित्व शक्ति का बोध करना लक्षणा का प्रयोजन है। जैसे 'आयुर्घृतम्' इस उदाहरण में दुग्धादि (दूध आदि) की अपेक्षा घृत (घी) में आयु बढ़ाने की शक्ति की अधिकता का बोध कराना लक्षणा का प्रयोजन है। इसी प्रकार शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा का प्रयोजन नियम से कार्यकारित्व शक्ति की प्रतीति कराना है। जैसे 'आयुरेवेदम्' में 'घृत' में निश्चित रूप से आयुवर्धक शक्ति है, यह बोध कराना लक्षणा का प्रयोजन है ।

इस प्रकार आचार्य मम्मट ने लक्षणा के छः प्रकार होते हैं-'लक्षणा तेन षड्विधा'। ये भेद हैं- उपादानलक्षणा, लक्षणलक्षणा, शुद्धा सारोपालक्षणा, शुद्धा साध्यवसानालक्षणा, गोणी सारोपालक्षणा, गोणी साध्यवसानालक्षणा।